क़लम का दर्द

● छविनाथ मिश्र

● युवा ज्योति
कलकत्ता-७०००० ६

प्रकाशक : युवा ज्योति
४२, पथरिया घाट स्ट्रीट
प्रवेश : मालापाड़ा (२रा माला)
कलकत्ता-७००००६

"क़लम का दर्द"

गुरुपूर्णिमा वि० स० २०४६ (१८-७-१९८९)

आवरण : राजेन्द्र कानूनगो

मूल्य : बीस रुपये

मुद्रक : अनुप्रिया प्रिन्टर्स
६ए, बड़ौदा ठाकुर लेन,
कलकत्ता-७००००७

KALAM KA DARD A COLLECTION OF LYRICAL
POEM OF CHAVI NATH MISHRA.
Published by : YUVA JYOTI, CALCUTTA-6

समर्पण

पेड - पाखी
फूल - पत्तों को पता है
और यह जो रास्ता है—
आदमी चलता रहा
बेख़ौफ जिस पर
वही
शायद
गुमशुदा है - लापता है
उसी
के
प्रति
यह
'कलम का दर्द' सम्प्रति—

—छविनाथ मिश्र

● कुछ इस तरह भी

'कलम का दर्द' मेरी कुछ ऐसी गीत - रचनाओं का संकलन है, जिनके माध्यम से मैंने अपने समय के मिज़ाज और तेवर की पहचान करते हुए अपनी कवि चिन्ता को एक और यात्रा या आयाम के संकट बिन्दु तक लाने की कोशिश की है।

सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों-विसंगतियों तथा वास्तविकताओं की भूमिका में रचे गए ये गीत संभवतः हर संवेदनशील रचनाकार के कलम के दर्द को सहला सकते हैं—तेज कर सकते हैं।

भाषा, शिल्प, बिम्ब एवं प्रतीक की ऋजुता और वक्रता के साथ एक कवि - गीतकार एवं मामूली आदमी के बीच अपनेपन के गहरे लगाव एवं भावात्मक या मानवीय सरोकार के रूमान का अगर कुछ आभास और अहसास इन गीत रचनाओं के भीतर से गुजरते हुए होता है तो मैं अपनी इस - गीत यात्रा को एक सार्थक प्रयास मानूँगा।

गुरुपूर्णिमा
१८-७-८९
साहब बगान
लिलुआ, हवड़ा

रविनाथ मिश्र

प्रकाशकीय

प्रचलित मान्यताओं और वादो के घेरे से परे सस्कृति सचेत, सार्थक जीवन-मूल्यों की तलाश; रचना और केवल रचना-धर्मिता से प्रतिबद्ध युवाओ का मंच है 'युवा ज्योति', जो सृजन की सार्थकता के प्रति आस्थावान है। उक्त शर्तों को पूरा करने वाले रचनाकारो (स्थानीय) की अप्रकाशित कृतियों का प्रकाशन और उनकी कृतियों का उचित मूल्यांकन हमारा उद्देश्य है साथ ही प्रकाशन से जुड़े व्यावसायिक मोह से उबरने की कोशिश हमारा ध्येय।

अपनी विरासत से प्रत्येक स्तर पर जुड़ने के लिये, सही दिशा-दृष्टि के लिये अपने वरिष्ठ रचनाकारों से जुड़ना हम जरूरी मानते हैं। हम यह भी मानते हैं कि आज की स्थिति में किसी भी रचनाकार का रचनाकार

होने से पहले एक मुकम्मिल इन्सान होना अधिक आवश्यक है। मानवीय मूल्यों के विरोध में जाने वाली हर सड़क पर हम प्रतिरोधक बनना चाहते हैं और सांस्कृतिक प्रदूषण फैलाने वालों के विरुद्ध एक कठोर चुनौती।

हमारा यह मानना है कि किसी भी वाद की खिंची हुई सीमा के भीतर से उठी हुई आवाज़ हमारे तय किये गये लक्ष्य की दिशा में हमें सहयोग देने में पूर्णत सक्षम नही हो सकती। संवेदना और विवेक के स्तर पर साम्य विचारों के लोग हमारे सहयात्री हैं। हम भारतीय परम्परा एवं संस्कृति के विचार प्रवाह से सामाजिक स्तर पर जुड़ते हुए नये परिवर्तनों की चुनौती एवं जीवन्तता से जुड़ने के पक्ष में हैं और विकास के विपरीत उठने वाले कदम के विरुद्ध। किसी भी प्रकार के आग्रह से मुक्त, स्वस्थ सर्जनात्मक वातावरण तैयार करने के हमारे प्रयास विचार गोष्ठियों, परिचर्चाओं एवं प्रकाशन आदि कार्यक्रमों के माध्यम से चलते रहे हैं, चलते रहेंगे। "क़लम का दर्द" का प्रकाशन इसी दिशा में एक प्रयास है।

छविनाथ मिश्र आधुनिक काव्य जगत का अपरिचित नाम नही है। जिन्होंने उनकी पूर्व प्रकाशित कृतिया देखी हैं उन्हे उनके चिन्तन एवं लेखन के विशिष्ट एवं विविध आयामों से जुड़ी रचनाओं में नवीनतम दिशा-प्रवृत्तियों के संकेत निश्चित रूप से मिले होंगे। हमें विश्वास है कि यह कृति छविनाथ जी को विशेष दृष्टि से देखने वाले लोगों के सामने उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का एक और आयाम प्रस्तुत करेगी।

हम आभारी हैं देश की उन सभी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं के जिनमें इस संग्रह की अधिकांश रचनाएँ प्रकाशित हुईं। उन सब जनों के जिन्होंने अपने विवेक एवं सामर्थ्य के अनुसार पुस्तक प्रकाशनार्थ सहयोग दिया, उनके भी जिन्होंने सहयोग का आश्वासन दिया और उनके भी जिन्होने हमारे इस क़दम का विरोध कर हमारी इच्छाशक्ति और उत्साह को प्रबल बनाया। फलस्वरूप इस पुस्तक की अधिकांश प्रतिया हम सादर सस्नेह आप सबको भेंट देने में सक्षम हो सके।

रथयात्रा, २०४६ वि० सं०
५ जुलाई, १९८९
कलकत्ता

युवा ज्योति के लिये
संजय बिन्नाणी

कवि-परिचय

छविनाथ मिश्र

जन्म : पौष शुक्ल सप्तमी
(६-१-१९२७)
प्रयाग (उ० प्र०)

प्रकाशित काव्य कृतियाँ :
अँगना फूले कचनार (१९६२)
समय दश (१९७१)
ऋचागीत (१९८६)
टुकड़ों में बँटा आकाश (१९८६)
कविता मे जीने का सुख (१९८७)

अनुवाद : (बांग्ला से)
योगीराज श्री श्यामा चरण लाहिड़ी
भैरव श्री श्री वामा खेपा
गीतानुवचन
के अलावा बहुत-सी बांग्ला व उडिया कविताओं—गीतो के अनुवाद कई पत्रिकाओं में प्रकाशित।

सम्पर्क : ३६-ए, साहेब बगान क्वाटर्स
१००, रवीन्द्र सरणी
पो० भट्टनगर, लिलुआ-७११२०३
जि० हावड़ा (प० ब०)

अनुक्रम :

आपातकालीन प्रसंग

नाव न कोई ठाँव

सन्नाटे की साँय-साँय है
नाव न कोई ठाँव
काला कम्बल ओढ़े सोया लगता सारा गाँव .

कहाँ गए
सब दूध नहाए
शिव-शिव जपते लोग
पीपल पात हो गए झाँझर
जड़ तक पसरा रोग
मालिक - मुलुक
अँजोर टोहते
महतो - मुखिया भोर जोहते
बाँझिन गाय खड़ी पगुराए
गुमसुम बरगद छाँव
नाव न कोई ठाँव .

'धनिया' के घर
धुआँ टिका है
'गोबर' गोबर गैस
ठाकुर लाठी माँज रहे हैं
पंडित दुहते भैंस
पगडंडी पर
नागिन सरकी
बाँबी ओस रात भर फरकी -
धरती खिसक - खिसक सी जाती
उठ - उठ जाते पाँव
नाव न कोई ठाँव .

रचना : ४-२-८७

स्वप्न इतने कागदी

फाइलो की बाढ ओढ़े स्वप्न इतने कागदी
बहा ले आई कहाँ से
समय की पगली नदी .

लिख रहे हैं
रेत पर कुछ नाम नीले लाल पीले
नर्म नाज़ुक उँगलियों से—
राजपुरुषों के कबीले
देश प्यारा
रट रहा है अटपटे जुमले कई
देखना है—
आ रही है दुधमुँही अगली सदी
...स्वप्न इतने कागदी .

काफिले
बारूद छितराते हुए कुछ आ रहे हैं
कुछ शिखर से शिखर तक की
दूरियाँ तै कर रहे हैं
क्रान्ति से
आतक तक साबित नही घर - घाट भी
आदमी की—
नियति शायद बुन रही है त्रासदी
...स्वप्न इतने कागदी .

रचना : १७-४-८६

● लोग फिर भी अजनबी हैं

दृश्य पहचाने हुए हैं
लोग फिर भी—
अजनबी हैं .

हम किसी आदिम अँधेरे में खड़े हैं
प्रश्न कुछ मुर्दा पड़े हैं
जो इन्हे कन्धा लगाते वे उजाले
कुछ ज़ुबानो
कुछ सलीबो पर जड़े हैं
तथ्य कुछ है
कथ्य कुछ है
शब्द बेगाने हुए हैं
दृश्य पहचाने हुए हैं
लोग फिर भी
अजनबी हैं .

पेड़ पाखी फूल पत्तों को पता है
और यह जो रास्ता है
आदमी चलता रहा बेख़ौफ जिसपर
वही शायद गुमशुदा है—
लापता है
ओट मे बैठे
अहेरी
तीर सब ताने हुए हैं
दृश्य पहचाने हुए हैं
लोग फिर भी—
अजनबी हैं .

रचना : २९-११-८६

● राम भरोसे पूरा देश

व्यर्थ विधान
और
आदेश
राम भरोसे पूरा देश .

चखो,
चुनावी गरम चाशनी
लखो करिश्मा दूरदर्शनी
मिट जाएँगे
सारे क्लेश
राम भरोसे पूरा देश .

भापा
भूसी नारा - चारा
अब दे मारा, तब दे मारा
भज मन प्यारे
टका टकेश
राम भरोसे पूरा देश .

दीन - धरम
सब लूले लँगड़े
जन को हाँकें
काने - कुबड़े
चित्त - वित्त में
बसा विदेश
राम भरोसे पूरा देश .

रचना : १०-१२-८६

● रत्ती भर
कविता

जीने का—
अब तो बस इतना ही सम्बल है
रत्ती भर
कविता है—
मुट्ठी भर चावल है ·

जीवन में मुक्ति की
न राह है
न राहत है
कागज पर लिखा हुआ
दर्द ही अमानत है
भूले क्षण चुके नहीं
संवेदन बिके नहीं
थाली में सन्नाटा गीतों में हलचल है
...इतना ही सम्बल है ·

खोलते जुलूसों से भूख नहीं मिटती है
रोटी की यात्रा—
क्या नारों से कटती है
आग बने रहना है
आग से—
गुजरना है
उम्र भर भटकना है शब्दों का जंगल है
...इतना ही सम्बल है ·

रचना : २३-२-८५

गीत लिखो
या दर्द बांट दो...

जड़वादी चिन्तन की तह मे
केवल जड़ता ही जडता है
गीत लिखो—
या दर्द बांट दो कोई फर्क नही पड़ता है .

जलसे और जुलूसो के चेहरो पर कोई—
शिकन नही है
मुर्दों का कारवाँ
रवाँ है—
कोई ओढ़े कफन नहीं है
शब्दो का मेला—
मेला है
वरसों तक हमने झेला है
कोई सेतु नही दिखता है
शब्द - शब्द के वीच कही भी
शब्द जोड दो—
शब्द काट दो, कोई फर्क नही पड़ता है .

एक क्रौंच - वध जिया गया तब करुणा
कविता में लहराई
अव तो क्रौंचवधों के साक्षी
हर क्षण की—
कविता पथराई
भीतर ही गुनना बुनना है
कविता को
तोड़ना मना है
आसमान - सी खाली - खाली
निथरी - निथरी इन आँखों में
चाहे जितना
समय औंट लो कोई फ़र्क नही पडता है .

रचना : २४-७-८५

● आसमान
में
टँगे

रचना का छद्म—
कई रंग में रँगे
हम नए त्रिशंकु आसमान मे टँगे .

धुआँ - धुआँ झेलती हुई तमाम दृष्टियाँ
धुँधलाईं चिटख गईं
किरण - बुनी सृष्टियाँ
दरके आईनों - सी
खण्ड - खण्ड
बिम्बों - सी
नये - नये नारों की जनगन्धी भीड़ मे
हम जुलूस दर जुलूस ऊँघने लगे
आसमान में टँगे .

आवाजें कैद हुईं और खुली मुट्ठियाँ
सुलझाते - सुलझाते
उलझ गईं गुत्थियाँ
हर दस्तावेज नया
सूने में
लिखा गया
रीते बेरंग द्वन्द - सूर्यों के वर्ण - क्रम
आँखों में कई - कई इन्द्रधनु उगे
आसमान मे टँगे .

रचना : २३-१-८१

यादों
में
प्यार खिले

यादो मे—
प्यार खिले गमके अविराम
हिरनी की आंखो मे उतर गई शाम .

सहयात्री छूट गए
टूट गई बाट
ऊंघता सिवान और बस्तियां उचाट
नीड़ - नीड
मुखर हुए
ओठो पर जुड़े बिखर गए कई नाम
—गमके अविराम .

दर्द हुआ कुछ गाढा
तेज हुई सांस
फैल गया पोखर भर तांबई उजास
झुकी - झुकी
छायायें
लिखती हैं सूरज को देहमय प्रणाम
—गमके अविराम .

रचना : १-२-८१

● तुम्हारे पास

आज
तुम्हारे पास हूँ
फिर भी बहुत उदास हूँ .

बाहर क्या कुछ छूट गया है
भीतर भी
कुछ टूट गया है
रथी - सारथी
सभी स्वार्थी—
सिर्फ़ सवाल
न हल या प्रतिफल
दुरा की क्या तुम्हारा आँचल
जीवन भर मैं धुना गया हूँ
जैसे - तैसे बुना गया हूँ
लगता है
कुल जोड़ - तोड़कर
केवल सूत - कपास हूँ
आज तुम्हारे पास हूँ
फिर भी—
बहुत उदास हूँ .

रचना : ३-२-८१

आगत
के
नाम

बीती सन्ध्याएँ जो उन्मना अनाम
उनको भी लिखता हूँ चन्दनी प्रणाम .

अनुत्तरित प्रश्नो के उगे घने जगल
छूट गए पीछे सब
सुबह - सुबह कल
किरणो ने दस्तक दी
और खुली सूर्यमुखी खिड़कियाँ तमाम
—चन्दनी प्रणाम .

ओस मे नहाए ऋतुफूलो - सा मन
यादो की खुशबू से
लिपा हुआ आँगन
बाँच रहा समय - पत्र
सोनाली सृजनमुखी आगत के नाम
—चन्दनी प्रणाम .

रचना : ७-२ ८१

क़लम
का
दर्द

शब्द सारे खोखले–
बेकार बेमानी
कौन अलगाए कलम से दूध औ' पानी ·

समय टूटे छन्द-सा अतुकान्त जिसकी भूमिका
मूकदर्शी - सा खड़ा है
लुटा यौवन क्रान्ति का
चना थोथा घना बाजे
इस तरह कुछ संसदी स्वर
फेंक कर
तेवर बदलती है नपुंसक राजधानी .

टूटने की प्रक्रिया में हर कलम का दर्द है
हाथ में गर्मी नहीं है
ख़ून भी तो सर्द है
थके हारे सभी नारे
क्या करे कोई क़लमकश
जब मसीहा, बन्द कमरे मे तराशे
इन्किलाबों की कहानी
शब्द सारे खोखले
बेकार बेमानी
कौन अलगाए कलम से दूध औ' पानी ·

रचना : २८-७-८०

फूँको तुम क्रान्ति-शंख

आग लिखो, ताप रचो, कुछ पिघले अँधियारा
दरवाज़े - दरवाज़े
खुले खिले उजियारा .

छन्दमुखी सुबहों के गीतिल आँचल छूटे
दिशा - दिशा धुन्ध धँसे—
शब्दों के पुल टूटे
अन्धा—
संवादहीन
समय छेड़ रहा बीन
कुछ खोटे सिक्को वाली रोशनी सहारा .

जुलूस दर जुलूस किरण हाँकते चले गए
रोशनी फ़रोश कई—
डाक - बाक छोड़ गए
फूँको
तुम क्रान्ति शंख
गतिमय हो गीत - पंख
बोध ऋद्ध मन विकसे, सिरजे स्वर धारा
आग लिखो ताप रचो—
कुछ पिघले अँधियारा .

रचना : ३-११-८०

● कुछ सोचना

क्या फोड़ेगा भाड भला एक अदद चना
हमको इस मुद्दे पर ही है कुछ सोचना ।

अपना हक लेने की रचो एक परिभाषा
बुनो युद्ध - स्तर पर जीने की जन - भाषा
बातें हो सार्थक
तो चीजें भी बनती हैं
चीज बिना बने—
व्यर्थ पूरी सरचना ।

राज - रोग का निदान पढ लेना मुश्किल है
बातों से नये मूल्य गढ लेना मुश्किल है
कुछ रचने - बुनने का—
काम अर्थ रखता है
काम नही आती है
केवल आलोचना ।

रचना : ७-१-७९

पारदर्शी दरपनों
का
सत्य

रिक्तता में भी भरा
कितना सुनहरा है—
कहीं मन की सतह पर
कुछ इस तरह भी दर्द उभरा है .

जिसे मैंने पारदर्शी दरपनो का सत्य माना है
उसी को प्यार जाना है
उसी की रोशनी का तार
मैंने ज़िन्दगी भर
बुना, ताना है
रास्ते मे साथ चलते हुए
कुछ वच्चेनुमा अहसास
थाम लेते हैं न जाने कब उँगलियाँ
और कहते हैं कि देखो—
यही कविता का पता स्पन्दनों के पास
जहाँ अब तक
ज़ख्म दर हर ज़ख्म
कितना लहकता ताज़ा हरा है
कहीं मन की सतह पर
कुछ इस तरह भी दर्द उभरा है .

रचना : ७-२-७९

कुर्ते में
कितने पैवन्द

टूट गए—
गुने - बुने गीतों के छन्द
कौन गिने कुर्ते मे कितने पैवन्द .

कागों की पाँतों में हंस फँस गया
दूधधुला बोध ढहा मूल्य धँस गया
जीने की—
लय टूटी
रचना पीछे छूटी
सपने - सवेदन सब दीखे निश्छन्द .

अपना तो सारा सच झूठ हो गया
पैसों का पेड़ उगा ठूंठ हो गया
कटी, छँटी
हर डाली
जेब, टेंट सब खाली
हरी - हरी पत्तियाँ तिजोरी में बन्द
कौन गिने—
कुर्ते में कितने पैवन्द .

रचना : १-१-७९

● चिटख़
रहा पोर-पोर

भीतर तो कविता में जीने की यन्त्रणा—
आँखो मे तिरता है, एक बोध शबनमी
जूझ रहा घर, बाहर एक आम आदमी ,

मैंने हर मौसम को फूलों की भाषा दी
रास नही आया कुछ गीतों के हमदम को
फूल और गन्ध की मिताली - सा यह जीवन
जाने कब सौंप गया राज - पाट शबनम को
जोड़ नही पातो कुछ शब्दों को लक्षणा—
टूट रहा अर्थ - विद्ध एक आम आदमी
...एक बोध शबनमी .

मौत के खिलाफ युद्ध - अमृत की कल्पना
जाने क्यो ? मैंने इस दर्द को बुना, चुना
कविता मे मुक्ति की तलाश एक प्रत्यय है
देखूँ कब मिलती है सपनो को व्यजना
मन की गहराई तक
मधु की अन्वेषणा
चिटख रहा पोर - पोर एक आम आदमी
...एक बोध शबनमी .

रचना : २३-१-७८

● फूल पत्ते आदमी

जहाँ जो कुछ भी नया है
समय अपनी उँगलियों से—
उस जगह को छू गया है .

क्रान्ति का मौसम यही है
वक्त की पहचान का
इतना इशारा कम नहीं है
फूल पत्ते आदमी—
जन्में खिलें ताजा हरे हों
चलो—
उनकी भी हथेली पर जरा - सी आग रख दें
जो अँधेरे से डरे हो
खुल गया आकाश देखो,
रोशनी का एक सीधा—
खुशनुमा पुल बन गया है
जहाँ जो कुछ भी नया है...

उग रहा है एक खतरा
जहाँ कोई सही चिन्तन
बुन रहा सपना सुनहरा
मुक्ति - मूल्यों के लिए जो
स्वयं को ही तोड़ते हों
चलो—
शामिल हों लड़ाई में उन्हीं की
टूटकर जो—
टूटते हर सिलसिले को जोड़ते हो
सुनो, शब्दों के घरों में
युद्ध - सा कुछ ठन गया है
जहाँ जो कुछ भी नया है...

रचना : २४-४-७८

• द्वन्द्व

शोर - गुल में क्या सुनोगे
और कब तक सर धुनोगे .

आग बोने में हमेशा—
एक खतरा उभरता है
फूल होना
गलत मौसम में
बहुत ही अखरता है
भ्रान्ति पहनो, क्रान्ति ओढ़ो
उम्र भर कुहरा बुनोगे !

बाघिनों का काम पुश्तैनी
हमेशा खून चखना
तुम्हें अपने खून से
आया न
अपना नाम लिखना
आग जीना, खून पीना
द्वन्द्व में किसको चुनोगे ?
और—
कब तक सर धुनोगे .

रचना : २४-४-७८

● अ-यात्रा

घटते हैं ऊपर से जाने कब दाम
सस्ती हैं चीजें —
हर दैनिक अखबार मे !
महँगा है लेकिन हर गल्ला बाजार मे .

एक ओर आदमी अभावो से जूझे
और एक ओर बन्धु !
सावन के अन्धे को हरियाली सूझे
सडकों पर बँटते है बडे - बड़े नाम
मिलती है—
मुट्ठी भर हवा हो कतार मे .

भूख और भूख आग आँतों की लहके
और यह समाजवाद ?
नारों में डूबे आवेदन रह - रह के
छिड़ता है रोज एक अन्तिम सग्राम
और शुरू होती है—
क्रान्ति फिर उधार में .

ठाँव-गाँव बिना बन्धु नाव कहाँ ठहरे
और इस अ-यात्रा मे
कौन सुनेगा गुहार नाविक सब बहरे
जाएँ अब किधर कहो, लाखो गुलफ़ाम
जाने क्यों—
छोड़ गए पुरखे मझधार में .

रचना : २७-११-७८

एक छंद टूट गया

गीतों की यात्रा में कितना कुछ छूट गया
एक दर्द गदराया, एक छन्द टूट गया ·

हर क्षण कुछ नये स्वप्न बुनने की आकुलता
रौंद गई जाने कब
सारस्वत देह - लता
इन्द्रधनुष रंगी संवेदना
विवर्ण हुई—
वस्तु - गन्ध का चिन्तन जीवन को लूट गया
···एक छन्द टूट गया ·

आँखों में लरक गया एक सजल आसमान
कविता को तोड गया—
रोटी का छन्द - ज्ञान
अनुभव की धरती पर
कई वृत्त बने - मिटे
पानी के गुब्बारे जैसा कुछ फूट गया
···एक छन्द टूट गया ·

यन्त्रणा पलाश हुई यात्रा का बोध चुका
हीरा रँग मन मेरा
कौडी के मोल बिका
अर्थ - विद्ध दूरी को
तै करने का सवाल
जीने की शर्त को हथौड़े से कूट गया
···एक छन्द टूट गया ·

रचना : जून १९७७

संकट में
रचना है

भीड़ पर रहम करो
भाषण कुछ कम करो .

अभी - अभी फेंक गया
समय एक सन्नाटा
एक नये तेवर ने चुप्पी का स्वर बाँटा
दूर बहुत जाना है—
तेज कुछ क़दम करो
भाषण कुछ कम करो .

किरण लिखो आंखो मे
ओठों पर गन्ध लिखो
स्वस्तिवती सुबहो - सी कोई सौगन्ध लिखो
सकट में रचना है—
पैना कुछ कलम करो
भाषण कुछ कम करो .

रचना : ११-१२-७५

● याद के घुंघलके में

याद के घुंघलके में—
बीते दिन छूटे
गीतों को मुखर करो सन्नाटा टूटे .

आसमान में धँसती है तमाम मुट्ठियाँ
तने हुए चेहरों पर उभरा आक्रोश
दुबक दुबक कर भरता
समय कहीं चौकड़ियाँ
भाग रहा हो जैसे कोई खरगोश
उँगली के पोरों पर
लिखी हुई शाम
काढ़ रही है मन में मौन बेल - बूटे
...बीते दिन छूटे .

जाने कब सरक गया हाथों से आईना
चिटख गए गदराए सपने गुलफाम
रिश्तों मे बँटा हुआ
प्यार कहीं खनक गया
ओठों पर चिपके हैं कई कटे नाम
भीतर ही भीतर कुछ
छीज गई रोशनी
दुखती - सी रग - रग को अँधियारा कूटे
...बीते दिन छूटे .

क़लम व

रचना : ३-५-७५

आओ
अब लौट
चलें

बातो ही बातों में
जङ्गल तक आ गए
आओ
अब लौट चलें !

यहाँ समय का होना—
खौफ़नाक सूनापन
हमें निगल जाएगा
आदिम अँधियारे का गोश्तखोर सन्नाटा
और एक वहशीपन
हमें याद रहा नही
लगता है सचमुच
हम दोनो पथरा गए
आओ—
अब लौट चलें !

कही नही आवाजें—
नसें सुन्न, सर्द खून
लागू हो जायेंगे
पता नही कब हम पर
मुहर लगे जङ्गल के भूखे कानून
शब्दों में ताप नही
जाने - पहिचाने क्षण
हमसे कतरा गए
आओ—
अब लौट चलें !

रचना : २-१२-७४

धान सारा चुग गई...
(एक अकाल - यात्रा)

धान सारा चुग गई फ्लोरेन्स की बुलबुल
एक. पूरा .देश टूटा भूख से आकुल .

योजनाएँ चुक गई है फाइलों में बन्द
यंत्रणाएँ भीड की
हो गई हैं निश्छन्द
चीखता है हर नगर हर गाँव हर गुरुकुल
एक पूरा देश टूटा भूख से आकुल .

हर जनार्दन चेहरे पर तैरता है मौन
आग की बहती नदी पर
सिरफिरे ये कौन
जो हवा मे रच रहे हैं भाषणों के पुल
एक पूरा देश टूटा भूख से आकुल .

राजधानी सो गई सारे खिलौने तोड़
धुन्ध ओढे ऊँघते हैं
संविधानी मोड़
फाँक कर आकाश सोए हैं 'अनिल-अब्दुल'
एक पूरा देश टूटा भूख से आकुल .

अन्नदाता सोचता है कुछ झुकाए माथ
अन्नपूर्णा मर गई
बेमौत खाली हाथ
कहाँ जाएँ दुधमुँहे बच्चे 'बकुल-पारुल'
एक पूरा देश टूटा भूख से आकुल .

रचना : ११-४-७४

● इन्द्रधनु टँगे हैं

हिल रहे—
असंख्य रिक्त तरकश तो पीठ पर
कन्धों पर
लाख-लाख इन्द्रधनु टँगे है .

मचों की रचना में बन गए जुलूस हम
आँखों में प्रतिबिम्बित लक्ष्य कही सरक गए
अलग - अलग
अपने आकाश की प्रतिष्ठा में
भीतर हम
काँच की तरह कहीं दरक गए
हम नये मुखौटों से चेहरों को ढाँक कर
सड़कों पर
दिशाहीन भीड़ बन उगे हैं
इन्द्रधनु टँगे हैं .

शब्दों के जगल में भटक गई सोच कही
अपना ही नाम ऐन मौके पर भूल गए
चुक गईं प्रतिज्ञाएँ
मुट्ठी मे बँधी हुई
अभिनय की मुद्रा में
फाँसी पर झूल गए
रगों की चेतना न हो सकी उजागर
रत्ती भर—
मन न रँगे, सिर्फ तन रँगे हैं
इन्द्रधनु टँगे हैं .

रचना : १४-२-७४

आओ,
कुछ क्षण
जी ले

आओ, कुछ क्षण जी लें गन्ध बाँटते हुए
आँखों मे हम गुलाब रग आकते हुए।

मौन रचें—
शब्दो सवादों को तोड़ दें
भाषा जो हमें कभी
काट - काट देती है—
चलो कही
चुपके से जगल मे छोड दें
ओठो पर खुशबू का एक नया पुल बाँधें
भीतर की खुरदरी दरार पाटते हुए
...गन्ध बाँटते हुए

यहाँ - वहाँ—
टूटे आकाशों को जोड़ दें
सन्नाटा, खालीपन
रोज हमें पीते है
आओ हम
एक नदी नन्दिनी निचोड़ दें
यादों की धूप बुनें जीने का सुख रोपें
रख जाएँ थोड़ा - सा प्यार लौटते हुए
...गन्ध बाँटते हुए।

रचना : १९७४

● चुके - चुके लोग

अँधियारा तोड़ रहे चुके - चुके लोग
रोशनी बटोर रहे—
बिके - बिके लोग .

सूरज से सीधे टकराने की बात
जहाँ - तहाँ फेंक रहे—
झुके - झुके लोग .

तेज़ - तेज कदम रखो मंज़िल नज्दीक
वक्त को तराश रहे—
रुके - रुके लोग .

रास्ता दिखाते हैं जन्म से अपाहिज
अन्धों के कन्धो पर—
टिके - टिके लोग .

मंचों पर रँक - रँक, चरते हैं भीड़
बाघों की खालों में—
लुके - लुके लोग .

कीचड़ मे धँसा हुआ सोने का देश
दाँत से निकाल रहे—
थके-थके लोग .

रचना : १९७४

शब्दों को लय दो

समयमुखी बछड़े को धरती सहलाती है
किरणों को दुह लो तुम—
वेला गुहराती है .

फेंक गई सन्नाटा कोई मायाविनी
भीतर ही भीतर
सचेतना धुआँती है .

अन्धकार सूँघ गया सुन्न हुई शिरा - शिरा
उन्मत्ता सत्ता - सी—
रात खिलखिलाती है .

धुन्ध की व्यवस्था में, कहीं नहीं कुछ दिखता
दिशा - दिशा दूर से—
अँगूठा दिखलाती है .

ऊँघते सितारों-सा, विप्लव का स्वर लगता
आवाजें डूब गईं—
साँस लड़खड़ाती है .

हवा गन्ध लिखती है, फूल की पँखुरियों पर
शब्दों को लय दो तुम
बाँसुरी बुलाती है .

रचना : १०-८-७३

● चलो—
लिखें कुछ रोटी

सूरज के पाँव पड़ी—
एक सुबह् अखरोटी
कुहरे को झेल रही है पहाड़ की चोटी .

मौसमी नकाब मढ़े
फतवे कुछ नये गढ़े—
राशन में आसमान बाँट रहा रोशनी
कुम्हलाईं वत्सवती किरणें गोरोचनी
अधमरे जुलूसों की
आवाजें टूट गईं
कुछ पीछे छूट गईं
बड़े - बड़े मुँह दीखे, बात दिखी कुछ छोटी
...एक सुबह् अखरोटी .

सारा मन दुखता है
भीतर तक चुभता है—
आँख भर उजाले में धुन्ध को अँजोरना
शब्दों की आग जला भूख को अगोरना
ऐसे में जीने के
अर्थ सब बिखर गए
आँखों में उतर गए
गीतों को गूँथें अब चलो लिखें कुछ रोटी
...एक सुबह् अखरोटी .

रचना : १९७३

● भरे जेबों में अँधेरा

चलो थोडा धुआं ले लो—
कही कोई सुख नही है ·

भरे जेबो मे अँधेरा घूमते कुछ लोग
फेंक देते है—
करोडों घरो की दहलीज पर
रोशनी मिलती नही हैं
किस्त पर भी या नकद खरीद कर
आंख मे कुहरा उगा लो—
दर्द का आमुख यही है
कही कोई सुख नही है ·

धूप चुगकर जियो, चाहे चांदनी तुम पियो
लेकिन ओठ सी लो—
सुलगने दो क्रान्ति की कोई कथा
बिछा लो आश्वासनों को
ओढ लो नकली व्यवस्था
कही जूझो, कही झेलो
सिर्फ दुख ही दुख सही है
कही कोई सुख नही है ·

रचना : १९७१

● रोशनी उधार की

दिया जला ड्योढी पर
अँधियारा कुछ सरका—
फैल गई आँगन में रोशनी उधार की .

आवाज़ें पीने की आदी इस भीड मे
कर्ज़ - लदे संकल्पों का कोई मोल नही
जीना है सिर्फ जिन्हें
मुट्ठी भर दानों पर
उनकी आकाक्षा क्या, कोई भूगोल नही
कागज़ के पन्नों पर
जनता का भाग्य लिखा—
जूझ रही आंधी से नौका मझधार की
...रोशनी उधार की .

स्वरशोषी आसमान तम का संरक्षक है
धरती की साँस रोज घुट - घुट कर चुकती है
मिट्टी के दीपों की
रोशनी निरर्थक है
लाख - लाख चेहरों पर भूख जहाँ उगती है
पेट की सलीबों पर
लोकतंत्र है लटका—
बुझी - बुझी बातियाँ मसीहा के प्यार की
रोशनी उधार की .

रचना : १९७१

हम कुछ लोग

हम कुछ लोग हैं—
रौंदे - रौंदे
बीते - सपने टूटे घरौंदे
हम हैं कुम्हारों की चाकों जैं
गदिया - गदिया
माटी के लौंदे ।

रचना : १९७८

● एक क़र्ज़ दूध का
[बांग्ला देश : मुक्ति-संदर्भ]

बन्धु चलो,
छन्दों को आग से सँवार लो
गीतों में मुक्ति का नया क्षितिज उभार लो ·

सुबह को अँधेरे के चंगुल से छीन लो
रोशनी उगाओ तुम धूप - फूल बीन लो
शब्दों के शिल्पकार
स्वर के सौदागरो !
कलमों के साथ - साथ आओ संगीन लो
नन्हा - सा आसमान लथपथ है खून से
आहत आवाज़ों को बढ़कर अँकवार लो !

ढूँढ रही है तुमको गन्ध जाफ़रान की
गुहारती है तुमको मंजरियाँ धान की
चूकें न आँचलों की
सूरजमुखी मनौतियाँ
बन्दी हैं लाख - लाख किरणों की जानकी
मातृभूमि का तुम्हें उतारना है एक क़र्ज़
और एक क़र्ज़ चलो दूध का उतार लो
बन्धु चलो—
छन्दों को आग से संवार लो ·

रचना : २६-१०-७१

• तीन मुक्तक

प्यार से ही आदमी ने देवता का पद लिया है
प्यार की खातिर हमेशा रोशनी बनकर जिया है
प्यार से ही स्वयं को—
प्रभु ने गढ़ा है आदमी - सा
फ़र्क इतना है कि बस वह एक माटी का दिया है .

प्यार आंखों में लिखी - सी सृजन की कोई किताब
प्यार ओठों पर खिला - सा एक ईरानी गुलाब
प्यार का हकदार तो है
सिर्फ माली या सवाली
फूल - पत्ता शाख हर शै पर लिखा पूरा जवाब

ऐसी कोई कुछ बात न जिसको, मैंने कहीं न जोखा - आंका
ऐसी ही कुछ बात कि जिसको मैंने बहुत उधेड़ा - टांका
प्यार कहीं चिपका - सा दीखा
और जिन्दगी भी कुछ ऐसी—
जैसे किसी दूध पीते बच्चे को ढांपे आंचल मां का

रचना : १९७८

देह गन्ध से परे

सुनती हो, चन्दना !
प्यार एक वन्दना ।

देह - गन्ध से परे
मन को जो महत् करे
ऐसा क्षण छुएँ
और भीतर से जिएँ-एक 'बोधिसत्व'
शून्य तत्व
जो अकुंठ अनुभव की—
नील वरन व्यंजना
प्यार एक वन्दना
सुनती हो चन्दना !

फूल - फूल - सा दिखें
समय हीन गन्ध लिखें
पानी - सा बहे
और शुद्ध - मुक्त रहें—एक सत्य मंत्र
हो स्वतंत्र
गुनें, बुनें 'हैमवती'—
दृष्टियाँ अबन्धना
सुनती हो चन्दना !
प्यार एक वन्दना ।

रचना : १९७९

● अनमांजे
रूपों को
रतन करो

अपनी ही मिट्टी का प्यार से जतन करो
जीवन के अनमांजे
रूपों को रतन करो .

धुन्ध ओढकर हमको समय - यक्ष ने छला
मेधावी क्षण बिखरे टूट गया सिलसिला
ऐसा कुछ रचो - जुड़ें
साथ - साथ
चुगें - उड़ें
कुहरे को चीर
मुक्त अपना ही गगन करो
अपनी ही मिट्टी का प्यार से जतन करो .

रचना के क्षण छू लें जनवादी दृष्टियाँ
ढह जाएँ गलत लिखी इतिहासी सृष्टियाँ
पुरखों के चिन्तन को
एक नयी
भाषा दो
ओठों पर जीने के—
मन्त्रों का चयन करो
जीवन के अनमांजे रूपों को रतन करो .

रचना : १९७७

● क़तरा-क़तरा लहू

[इन्दिरा गाधी अप्रत्याशित मृत्यु पर]

आज की सुबह का चेहरा उदास लगता है
हरेक लम्हा मौत का लिबास लगता है .

कँवल - कँवल - से आरिज़ पे—
यह क़तरा - क़तरा लहू क्या है ?
दर्द की गमक - गमक जैसी
यह सन्दली खु़शबू क्या है ?
आलमे अम्न मे
यह खू़न की जुस्तजू क्या है
इब्ने आदम बता—
आख़िर तेरी आरजू़ क्या है ?
फ़ज़ा के सुनक - सुनक - से रेशों में
हवा का उड़ा - उड़ा होशो हवास लगता है
आज की सुबह का
चेहरा उदास लगता है .

रचना : १९८४

मेरे आँगन
गाछ
अनार

टहनी - टहनी खिलता प्यार
मेरे आँगन गाछ अनार .

किरण - नहाई—
पाती - पँखुरी
फूल - फूल हो गई देहरी
गन्ध - लिखी
स्वरलिपि गमकाए
मुकुलित आम छन्द छतनार
मेरे आँगन गाछ अनार .

श्यामल - श्यामल
शुभ्र सुनहरी
ऋतुवर्णा छवि कोई उभरी
पलकें पुलकी
छलकी आँखें—
प्यारी श्वेत, श्याम रतनार
मेरे आँगन गाछ अनार
टहनी - टहनी
खिलता प्यार .

रचना : १०-२-८७

● शब्द
पीटे जा रहे हैं

कुर्सियों पर ऊँघता है एक पूरा देश
चुक गया है कहीं—
कलमों का समर - आवेश .

जिन्होंने देखा नहीं कुछ माथ - मुख पुर - ग्राम
कुर्सियों ने वरे हैं, ऐसे नैनसुख नाम
सर्जना बेहोश लेटी
पीढ़ियाँ - जनमीं क्रिकेटी
दूरदर्शन ने रचा रामायणी परिवेश .

धन बटोरे हर महाजन हर जनार्दन जन
अक्लमन्दों के वतन में कलम है बेवतन
क्या कहे किससे क्या लिखे
अनुबिम्ब कुछ अन्धे दिखे
रेवड़ी खुद खा गए दे - दे नये उपदेश .

रोशनाई पी गया कितनी नया इतिहास
चेतना धुँधला गई, कौंधा विरोधाभास
बिकी प्रतिभा व्यक्ति सत्ता
चुकी भाषिक अर्थवत्ता
शब्द पीटे जा रहे हैं, चुप खड़ा आदेश .

रचना : ११-१०-८७

● हम दिमाग़ी तौर पर

हम दिमाग़ी तौर पर हो गए हैं कंगाल
दल - दलों मे धँसते - धँसते हो गए दल्लाल .

बिना ज्वालामुखी फूटे, ढहे - डूबे रोज हम
राजनीतिक चाल का ही नाम है भूचाल .

कौन खोले ज़बाँ यारो, मसीहाओ के खिलाफ़
यह हुआ तो क्यों हुआ बस चीखते लाखो श्रृगाल .

कौन बांधे क्रान्तिघटी राजसत्ता के गले मे
कुर्सियों पर ऊँघते हों जब गुरुघटाल .

घर्मंघट की घाटियों मे घुट गया दम देश का
जहाँ देखो वहाँ बैठा डाल पर वेताल .

ताल बैठाते रहे हम और ताले लग गए
तालियो की ताल का अंजाम है हड़ताल .

रचना : १६-१-८२

आपातकालीन
प्रसंग

[१]

आगे हो लो या रुक जाओ, कहीं नहीं है कोई रहबर
आहिस्ता - आहिस्ता चलता है यह आपाती बुलडोजर .

खामोशी के इस आलम मे साबित बचा न कोई ख्वाब
कितनी शर्तें चीख रही है आँगन - आँगन कोहबर-कोहबर .

धरती दिखती पानी - पानी, आसमान भी कुहरा - कुहरा
किसकी कौन खबर ले यारो सब के सब हो गए बेखबर .

लफ्ज़ों का जगल गुमसुम है, हिलते नहीं जबा के पत्ते
आवाजो को निगल गया है सन्नाटे का कोई अजगर .

शहर - शहर ऊँची दूकानों के पकवान हो गए फीके
पढते थे जो कभी फ़ारसी, बेच रहे हैं तेल दर ब दर .

बागी कलम बुना करते थे इन्किलाब के कितने नगमे
बीन रहे हैं झीनी - झीनी कुहरानुमा कबीरी चादर .

रचना . १५-८-७५

[२]

पूछते हो खैर बोलो कहां अब तक तुम रहे
लब हुए खामोश प्यारे ! बिक गए हैं कहकहे.

आंख में उगने लगा है आग की तहरीर - सा कुछ
कौन वायदों पर हवा के इस तरह जिन्दा रहे.

एक सन्नाटा नसों में चुभ रहा है तीर - सा
धुन्ध की गूंगी फज़ा मे कौन किससे क्या कहे.

बज्म में अपने हक़ों का ज़िक्र छिड़ता है इधर
निगल जाते है उधर कानून के कुछ अज्दहे.

खैरियत ही खैरियत है, उनको पहुँचाना सलाम
और कहना कोई कब तक दर्द दूरी का सहे.

रचना : ३१-८-७५

[३]

बन्द लब के दायरे मे कोई गुल खिलने लगा
बज्म मे उनकी जफा का जिक्र अब छिड़ने लगा ।

पत्ता - पत्ता ओढकर चुप था, अँधेरे का लिहाफ़
किरण ने आवाज़ दी तब सर उठा हिलने लगा ।

जो खता हमसे हुई थी उसको वे दुहरा रहे
उन्हे भी है पता इसका राज़ कुछ खुलने लगा ।

बेज़ुबानो को ज़ुबा दे, कहाँ है ऐसा निज़ाम
अन्दलीबो से चमन का बागबा कहने लगा ।

राह से हम कट गए या वक्त ही गुमराह है
बहस का यह सिलसिला अब रातभर चलने लगा ।

रचना : २१-१०-७५

[४]

सूने में कहीं चीखता हर आम आदमी
चूसा गया है आम - सा हर आम आदमी .

दरपन को तोड़ते हैं, अँधेरे मे कई लोग
रह - रह के कहीं टूटता हर आम आदमी .

कितने भगीरथो की अक्ल पर पड़ा पत्थर
पत्थर रहा ढकेलता हर आम आदमी .

नामो की तिजारत मे कई नाम जुड़ गए
बेनाम मगर हो गया हर आम आदमी .

कुछ खास लोग आम की करते हैं पैरवी
अपनो के बीच चुक गया हर आम आदमी .

हर ओर दीखता है, मसीहाओं का जुलूस
लेकिन सलीब पर टँगा हर आम आदमी .

रचना : १२-७-७५

[५]

आदमी से आदमी को आज तक जो कुछ मिला है
यह मुसीबत के पहाड़ों का सुहाना सिलसिला है.

रोज़ किरणों के मुलायम हाथ बुनते स्वप्न कितने
रेशा-रेशा टूट जाने का मगर हरदम गिला है.

लफ्ज बनकर जी रहा है अक्स बन पाता नहीं
बात मामूली नही है दोस्त ! दिल का मामला है.

वह दिमागी सरहदों तक हमसफ़र है आसमा का
मगर दिल की बात पर तो एक लम्बा फासिला है.

मन्दिरों से मस्जिदों तक हमखयाली का फरिश्ता
भूलकर बुनियाद अपनी एक बुनियादी बला है.

आदमी दिल खोलकर जब आदमीयत से जुड़ा है
तब चमन के लब पें खुशबूदार कोई गुल खिला है.

रचना : १-२-७६

[६]

हमने कुछ ऐसी ही आजादी पाई
शोषण की सीमा तक केवल मँहगाई .

थोड़ा - सा भाषण लो, थोड़ा वक्तव्य चखो
हलधर के ओठ खुले गाय भी रँभाई .

राजनीति का कोरस, रात - रात भर ऊधम
चाट गए तिलचट्टे दोहा - चौपाई .

एक अदद गुफानुमा संसदीय कोठरी
चार - चार प्रत्याशी एक चारपाई .

कुर्सी के इर्द - गिर्द एक मुल्क सिमट गया
सारे झगड़े की जड़ कुर्सी हरजाई .

बड़े जतन से रक्खा लेकिन बेकार गया
ताकों पर धरा - धरा चिन्तन गीताई .

फाख्ता उड़ाते थे एक दिन खलील मियाँ
अब तो वे तोड़ रहे रोटियाँ पराई .

धुआँ - धुआँ हो गई गुलाबों की ख्वाबगाह
याद रहा नून - तेल भूली कविताई .

रचना : १६-५-७७

[७]

नारेबाजी का मसला है
आम आदमी एक बला है.

फूँक - फूँक कर पीता मट्ठा
पट्ठा लगता दूध - जला है.

शहर - शहर का अन्देशा है
काजी इसीलिए दुबला है.

कविता मे भी किस्से मे भी
इन्किलाब का यह जुमला है.

कौन हिसाब करेगा भाई
कहाँ - कहाँ कितना घपला है.

स्याह - सफेद पोतते रहना
राजनीति की एक कला है.

झुग्गी और झोपड़ी वालो !
चीखो मत मौसम बदला है.

काम करो फल से क्या मतलब
धरती तो सुजला - सुफला है.

रचना : २०-५-७७

[८]

ये कुछ लोग हैं बौने - बौने
ये हैं मसीहा या कि खिलौने .

संसद के जंगल में कुलांचें
दीख रहे जैसे मृग - छौने .

इनकी निगाहों में हम ऐसे
सौदे सरीखे औने - पौने .

खँडहर - खँडहर खाटें हमारी
इनके लिए मखमल के बिछौने .

हम मोहताज हैं, ये सरताज
हमको डंडे इनको डिठौने .

रचना : १९७८

[९]

विकती है जहाँ जिन्दगी मुँहवन्द गुलाबो की तरह
हम टूट गए दोस्त दर्दमन्द रबाबो की तरह ·

फुरसत किसे है खोल दे दराज दर दराज
हम चुक गए हुजूर कहीं वन्द किताबों की तरह ·

सपनो का जमा - खर्च सुवह - शाम बरावर रहता
हम हैं किसी बनिये के कलमबन्द हिसाबो की तरह ·

अच्छा - सा कोई नाम सियासत में नहीं हासिल
अपनों के जेहन में रहे गुटबन्द खराबों की तरह .

कुछ भी पता न कितना नशीला लहू हमारा
हमको तो पी गए ये नये रिन्द शराबो की तरह ·

उभरा सवाल दर सवाल अक्स नया हमदम !
जो जेरेलब लिखा है, नजरबन्द जवावों की तरह ·

रचना : १८-१२-७९